 E-ISSN No: 2395-0269
Available online at: www.ijaur.com

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का राजनीतिक स्वरूप : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

साधना आदिवासी
शोध छात्रा
शा0 टी0 आर0 एस0 महा0 रीवां म0 प्र0

सारांश –: भारतीय सामाजिक संरचना के मौलिक आधार के रुप में जाति व्यवस्था निरंतर परिर्वतन के दौर से गुजरती रही है।जातियों में उपजातियों की महत्ता स्थानीयता के प्रभाव से स्पश्ट होती है। प्रत्येक स्थानीय समूह में किसी एक या दो प्रभु जातियों की प्रधानता होती है जो उनकी आर्थिक एवं राजनीतिक प्रतिश्ठा में परिलक्षित होती है।आरम्भ से ही अनेक जातियों ने विशेषतः निर्योग्यता की शिकार एवं भोशित जातियों ने अपने अधिकारों एवं भाक्तियों के प्रति सजगता जाहिर की एवं इनकी प्रभावशीलता में कमी समय के साथ साथ परिवर्तित होती गयी।आज जातियों के आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों एवं भाक्तियों का निर्धारण सर्वोच्च स्थान प्राप्त जातियां नहीं बल्कि जातियों की संख्यात्मक बहुलता निर्धारित करती है। भारतीय समाज के राजनीतिक पहलू ने इसका प्रयोग चुनाव के लिए किया। चुनाव चाहे स्थानीय हो या प्रांतिय हो अथवा लोक सभा के हों जाति का प्रभाव सर्वोच्च होता है। लोक सभा चुनाव 2019 में इसे स्पष्ट रुप से अनुभव किया गया।जातिगत समीकरण जनता की मनोवृत्ति के आधार पर बनते बिगडते हैं और भारतीय जन विशेषतः ग्रामीण जन जातिगत नेतृत्व को ही अपने व्यक्तिगत व समूह स्वार्थ की पूर्ति मानते हैं और इसका लाभ राजनीतिक दलों के द्वारा भरपूर उठाया जाता है। चुनाव में विकास का आदर्श महत्वपूर्ण नही रहा। सत्य है जहां देश के पहले जाति को महत्व दिया जाएगा वहां समाज के संगठनात्मक विकास का सपना अधूरा ही रहेगा। आवश्यकता है जातिगत संकीर्णताओं से परे राष्ट्र निर्माण की सृजनात्मक प्रवृत्ति को बढावा देने की।

मुख्यशब्द–: प्रभुजाति द्विजवर्ण अन्त्यज जातिगत समीकरण ।

प्रस्तावना –:

जाति अर्द्व संघटित समाज की एक ऐसी सामाजिक इकाई है जिसे संपूर्ण भारत में पहचाना जा सकता है। जन्म पर आधारित सामाजिक समूह के रुप में जाति भारतीय सामाजिक संरचना का मूल आधार रही है और आज भी ग्रामीण समुदाय का सामाजिक ढाँचा जाति पर आधारित है। यह एक ऐसा स्थानीय समूह होता है जिसके सदस्यों में व्यवसाय एवं विवाह संबंधी प्रतिबंध होता है। विशेष व्यवसायी समूह के रूप में परस्पर संबंध रक्त की शुद्वता के आधार पर निर्धारित होते है। वर्ण व्यवस्था से अनेक जातियाँ निकलने के साथ ही ऊँच–नीच का भेद भी बढ़ता गया। मनुष्य शूद्र ही नहीं अस्पृ"य एवं अन्त्यज भी माना जाना लगा। यह सत्य है कि जाति की शाखाओं एवं विभागों की वृद्धि अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों के कारण हुई, जातीय पंचायतों की भूमिका यहां सर्वोपरि मानी जाती थी। किन्तु सम्राट हर्षवर्धन के काल तक सवर्ण एवं असवर्ण विवाह का प्रचलन के अनेक उदाहरण देखने को मिलते है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय यानि पेशा जिसे जाति की पहचान माना जाता है, जिसके आधार पर जाति की श्रेष्ठता व निम्नता निर्धारित होती है के निर्धारण में द्विज जाति समूहों का प्रधानत्व का विचार उजागर होता है। अपने अभिजात्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये शिल्प एवं कौशल से संबंधित व्यवसायों को अपने से दूर रखा एवं इन्हें असवर्ण जातियों तक सीमित किया क्योंकि शिल्प व कौशल से संबंधित व्यवसाय को द्विज जाति समूह हीन मानते थे इसलिए इसे निम्न जाति व शूद्रों तक ही सीमित रखा। वास्तव में भारत के आर्थिक एवं बौद्धिक विकास में इसका विपरीत परिणाम दिखाई पड़ा क्योंकि जो समूह शिक्षित था, जिसका बौद्धिक विकास अधिक हुआ था वे औद्योगिक कलाओं से वंचित रहें। आज भी भारतीयों में व्यवसाय की उच्चता एवं निम्नता की धारणा मौजूद है जो उनके विकास में बाधक है।

जातिगत भेद का आज जैसा दृढ़ रूप पहले नहीं था। खाप पंचायत इसका उदाहरण है जहाँ बहिर्जाति विवाह करने वाले युवाओं को प्राण गँवाने पड़े। जातीय पंचायतें जाति प्रतिबंधों को कठोरता से लागू करने के लिये नियमों एवं कानूनों को प्रथागत व्यवहारों के रूप में निर्धारित करती थी। इनमें भोजन पेशा एवं विवाह संबंधी प्रतिबंध प्रमुख थे। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि हिन्दू धर्म ने अपने अनुयायियों का चिंतन करने की पूरी स्वतंत्रता दी किन्तु आचरण संबंधी अंकुश समाप्त न कर पाया। आचरण संबंधी स्वतंत्रता व

प्रतिबंध शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र में विशेष रूप से लागू होता है। एक हिन्दू व्यक्ति शहर में किसी अन्य धर्म के व्यक्ति के साथ भोजन कर सकता है किन्तु वह ग्रामीण क्षेत्र में अपने ही धर्म में निम्न मानी जाने वाली जाति के यहां यह साहस नहीं कर सकता। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में सवर्ण परिवार अपने बच्चों का स्कूल में असवर्ण के साथ बैठने एवं मध्यान्ह भोजन करने से रोकते है। भोजन एवं सामाजिक सहवास संबंधी प्रतिबंधित स्वरूप आज भी विद्यमान है जिसे जातीय पंचायतों का प्रश्रय प्राप्त है। वस्तुतः आरम्भ से ही जाति को किसी एक निश्चित परिभाषा में बाँधा नहीं जा सका। इसके विभिन्न भाग–विभाग बाधित रहे किन्तु भोजन एवं सामाजिक सहवास, पेशा एवं विवाह संबंधी प्रतिबंध मौलिक विशेषताओं के रूप में संपूर्ण भारत वर्ष में विद्यमान रहे इन सभी में जन्म का संप्रत्यय मौलिक रहा और आज भी विद्यमान है जाति कभी समाप्त न होने वाली समाजिक संस्था के रूप में अच्छे एवं बुरे स्वरूप में प्रस्थित है। जहाँ जाति समुदाय एवं समूह स्तर पर एकता का प्रतीक रही है वहीं घोर शोषण की जातीय आधारित राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता के स्वरूप का निर्धारण भी हुआ। परम्परागत रूप में जाति समूहों के पास आर्थिक एवं राजनीतिक भाक्तियाँ वितरित थी, यानि अलग–अलग जातियों के पास अलग–अलग आर्थिक व राजनीतिक शक्तियाँ थी। इसके निर्धारण का अधिकार भी उच्च जाति समूहों के पास था। उच्च जाति समूह अपने अनुसार इस बात का निर्धारण करते थे कि आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था कैसे आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों में परिवर्तित होगी। आज इसका निर्धारण राजनीतिक दल के प्रमुख द्वारा किया जाता है जो जातीय स्तरीकरण में भले ही निम्न जाति से संबंधित ही क्यों न हो। जाति के संस्थागत एवं प्रथागत स्वरूपों ने जाति संबंधित विभिन्न प्रतिबंधों को निर्मित किया एवं जाति संगठनात्मक रूप में अनेक व्यवहारिक प्रतिमानों के साथ विद्यमान रहीं। जाति में व्याप्त शोषण की बुराई को समाप्त करने के लिए अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन भी हुए जिनका मुख्य उद्देश्य जाति प्रथा को समूल नष्ट करना था, किन्तु जाति समाप्त होने बजाय अनेक नए स्वरूपों में समय के साथ जड़ पकड़ती गई। वर्तमान समय में जाति का जो राजनीतिक स्वरूप परिलक्षित हो रहा है उसके सामाजिक परिणाम क्या होंगे ? क्या जाति अपनी पूर्व अवस्था से अधिक विकृत एवं बिगड़े स्वरूप मे आएगी ? क्या स्थानीय एवं क्षेत्रीय आधार पर जाति में जो एकता का स्वरूप परिलक्षित होता है वह संघर्ष में परिवर्तित होगा ? आदि अनेक प्रश्न वर्तमान में राजनीति के जातिगत स्वरूप से निर्मित होते है। आधुनिक भारतीय समाज में जाति का प्रथागत स्वरूप व्यवस्था के रूप में परिलक्षित होता है।

इस संदर्भ में जाति का स्थानीय आधार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि किसी जाति का विशेषतः निम्न जाति का किसी स्थान पर बहुल जनसंख्यात्मक आधार है तो वे जातीय सदस्यों की संख्या के आधार पर राजनीतिक शक्ति का उपयोग करती हैं तथा अपने से उच्च जाति समूह पर आधिपत्य का दावा भी करती हैं। वर्तमान लोकसभा चुनाव 2019 में जातिगत राजनीति का स्वरूप उभर कर सामने आया है। प्रस्तुत आलेख में जाति का राजनीतिक स्वरूप का आरम्भ समाज में क्रमशः उसके परिवर्तित स्वरूप एवं सामाजिक परिणामों के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं एवं न्यूज चैनल्स में प्रस्तुत जातिगत राजनीति की प्रस्तुति इस आलेख के प्रेरणा स्रोत रहे। जाति व्यवस्था का राजनीतिक स्वरूप जनगणना से आरंभ हुआ एवं क्रमशः आरक्षण एवं चुनाव में उम्मीदवारी एवं वोट की महत्ता के रूप में स्पष्ट हुआ। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ब्रिटिश शासन काल (उपनिवेश काल) में सन् 1900 से जाति प्रथा को संस्थागत रूप मिला। जाति आधारित जनगणना ने जाति को राजनीतिक स्वरूप दिया। सर्वप्रथम संपूर्ण देश में जनगणना 1867–1871 में हुई थी और उसी समय से निम्न जाति समूहों में समाज में उसके स्थान के प्रति चेतना जागृत हुई एवं उनमें समाज में जन्म आधारित जातिगत समूह के स्थान पर उच्च स्थान प्राप्त करने के प्रयास रहे। अध्ययन से प्राप्त अने कउदाहरणों मे यह तथ्य स्पष्ट होता है ‘‘दो तमिल किसान जातियाँ बेल्लाल और पडैयाची ने अपने वर्ण प्रदत्त स्थान से उच्चवर्ण क्रमशः वैश्य व वन्निय कुल क्षत्रिय कहे जाने की इच्छा व्यक्त की थी। (एडगर थर्सटन– 'दक्षिण भारत की जातियाँ और जनजातियाँ') सन 1901 की जनगणना में जनगणना का लाभ उठाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। घुर्ये के अनुसार ‘‘ बहुत सी महत्वाकांक्षी जातियों ने अपने स्थान को उच्च करने के इस अवसर को भांप लिया उन्हों ने अपने सदस्यों के संगठन किये एवं पंचायतें बनाई तथा उनके अनुसार गौरव के अनुकूल स्थान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा व्यक्त की। उच्च जाति को छोड़कर निम्न जाति के ने ताओ ने जनगणना को उनके सामाजिक दावों का आग्रह करने व मान्यता प्राप्त करने का अवसर माना जो ऊँची जातियों से उन्हें प्राप्त नहीं होता था। (जी.एस. घुर्ये–भारत में जाति और वर्ग) सन् 1911 की जनगणना के समय बंगाल में यह सामान्य धारणा थी कि जनगणना का उद्देश्य जातियों की संख्या निर्धारित करना नहीं बल्कि उनका अपेक्षित स्थान निर्धारित करना है जो उनकी सामाजिक श्रेष्ठता का निर्धारण करते है। (एम.एन. श्रीनिवास–आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन) अपने प्राथमिकता क्रम मे स्थान निर्धारित करने के लिये सैकड़ों याचिकाएं आई साथ ही उन्हें जो स्थान दिया

गया था वह वांछित न होने के कारण कुछ लोग नाराज भी थे। ब्रिटिश कालीन भारतीय सरकार ने सन् 1931 की जनगणना में सवर्णों के साथ–साथ दलित जाति समूह की ठीक–ठीक संख्या प्राप्त करने के लिये जनगणना आयुक्तों को स्पष्ट निर्देश दिए। इस जाति आधारित जनगणना का उद्देश्य वर्त मान (उस समय) एवं भविष्य में कल्याण कार्य करना एवं अनेक समस्याओं का समाधान करना माना गया। अर्थात् सामाजिक एवं राजनीतिक कारणों से इसके औचित्य की प्रस्तुति की। राजनीति के क्षेत्र में निम्न जाति समूहों का उचित प्रतिनिधित्व एवं उन्नत सामाजिक वर्गो के समकक्ष लाने का दृष्टिकोण प्रधान था।

मूलतः 1931 की जनगणना मे सामाजिक स्थिति के बजाय राजनीतिक प्रभाव महत्वपूर्ण रहा। 1911–31 जनगणना में प्राप्त सामाजिक स्थिति से नाखुश व्यक्तियों के द्वारा की गई शिकायतों व प्राप्त सामाजिक स्थिति को मान हानि मान लेने की परिस्थितियाँ निर्मित हुई। ''जनगणना में जातिगत आधार को सम्मिलित करने के पीछे ब्रिटिशों के द्वारा भारतीय समाज में विभाजन बढ़ाने अथवा बनाए रखने का षड़यंत्र रहा होगा। यह विचार तत्कालीन राष्ट्रवादी भारतीयों का था। (इंडिया टुडे 26 मई 2011 आवरण कथा) परिणाम स्वरूप 1941 में जनगणना में जातिवाद का विरोध हुआ और अंग्रेज जनगणना आयुक्त ने जनगणना से जाति विषय कॉलम को हटा दिया। 1931 में जब इस तरह की जनगणना की गयी थी तब उच्च जातियों की संख्या ज्यादा थी और उच्च जाति का होना गर्व की बात मानी जाती थी किन्तु आज निम्न जाति का होना फायदेमंद है। 1931 से लेकर 2001 तक एक बार भी जाति आधारित जनगणना नहीं की गई। निश्चित तौर पर अंग्रेजों ने इसकी शुरूआत की किन्तु इसके विभाजन की स्थिति में आने की आशंका से बंद कर दिया गया था। विडम्बना यह है कि 8 दशक पहले जिसे अहितकारी मान कर समाप्त किया गया था, आज 2011 में पुनः उजागर किया गया है। किन्तु 2011 की जनगणना के समय 1931 की जनगणना का विपरीत स्वरूप उभर कर आया। जातियो ं का वर्गीकरण कैसा हो ? इसका राजनीतिकरण हो चुका था। उदाहरण के लिये ''राजस्थान में पिछड़े वर्गो में माने जाने वाले गुज्जर अब अनु सूचित जाति में सम्मिलित होना चाहते है। ताकि मीणा जाति के रूतबे को कम कर सकें । मराठा फिर कुनबी के रूप में वर्गीकृत होना चाहते है और पिछड़े वर्ग का दर्जा पाना चाहते है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में अलग–अलग जातियाँ पिछड़ा एवं अनुसूचित जातियों में सम्मिलित होती है। (इंडिया टुडे 26 मई 2011) जनगणना के पश्चात् आरक्षण की नीतियों के त्रुटिपूर्ण निर्धारण से जातीय आधारित सामाजिक दूरी का नया रूप विकसित हुआ जो इसके विरोध में होने वाले आन्दोलनों से स्पष्ट हुआ। राजनीतिक नेतृत्व ने आरक्षण के आधार पर पिछड़ी जातियों में अनेक विभाजन रेखाएँ निर्मित की एवं उनमें अति पिछड़ी जाति की अवधारणा को भी स्थापित किया। ''सन् 1970 के दशक से 1990 के दशक तक बिहार प्रान्त की राजनीति में यह विभाजित स्वरूप निर्मित हुआ जो पिछड़ी जातियों के लिये पंचायतों में 20: आरक्षण के रूप में क्रमशः तेज़ धार के रूप में बढ़ता गया।'' जिसका उद्देश्य वोट की माँग एवं राजनीतिक जीत रहा होगा। (इंडिया टुडे 26 मई 2011)

वर्तमान में लोकसभा चुनाव 2019 में जाति की स्थानीयता की महत्ता उभर कर सामने आयी है। राजनीतिक दल वोट की राजनीति में जाति विभाजित समाज को और बाँटने का प्रयास कर रहे हैं। चुनाव में लगभग प्रत्येक राजनीतिक दल ने अपने मतदान क्षेत्र में उम्मीदवारों का चयन उनके जातिगत विष्टिता के आधार पर किया। कौन–सा नेतृत्व कितना दलित एवं पिछड़ी जाति का वोट खींचेगा इसका निर्धारण नेता की जातिगत पृष्ठभूमि के आधार पर होता है। नेतृत्व किस जातिगत क्षेत्र में ज्यादा प्रभावााली है वहीं के लिये उनमें से ही नेता का चयन किया जा रहा है साथ ही निम्न जाति समूह में महिला उम्मीदवारों को प्रधानता दी जा रही है। जातीय गणित राजनीति में किस प्रकार हल होगा यह स्थान विशेष में विशेष जातियों की बहुतायत पर निर्भर करता है। आज भारतीय समाज में सोशल इंजीनियरिंग का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई दे रहा है। विशेषतः राजनीति के क्षेत्र में नयी–नयी सोशल इंजीनियरिंग का प्रयोग हो रहा है एवं नये सामाजिक समीकरण बनाए जा रहे हैं। महानगरीय क्षेत्र में किस इलाके में किस प्रान्त के लोग सर्वाधिक संख्या में निवास करते हैं? इस ओर भी ध्यान दिया जाता है और उसी आधार पर उस क्षेत्र से संबंधित व्यक्ति को प्रत्याशी के रूप में चुना जाता है। दिल्ली उ.प्र., बिहार, हरियाणा, चंडीगढ़ आदि प्रान्तो ं मे ंजातिगत राजनीति का खुला रूप सामने आया है। कुछ नेतृत्व ने देश से पहले जाति को स्थान देने की बात महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार की है। (इंडिया टुडे 2019)। राजनीतिक दलों के द्वारा विभिन्न जातियों का एक सामाजिक गठबंधन तैयार किया जा रहा है जिसका उपयोग विकास के लिये न होकर चुनावी बहुमत पाने के लिये किया गया है। बिहार एवं उ.प्र.में यह सर्वाधिक प्रभावशाली है। पिछले 2014 के लोकसभा चुनाव में यह स्पष्ट हुआ था कि उ.प्र. में जाति आधारित राजनीति पतन की ओर है। कांग्रेस को मिली 21 सीटों की जीत को राहुल गाँधी ने ''जाति के विरूद्ध विकास की राजनीति या वोट'' कहा था। वहीं नीतिश कुमार ने उच्च

जाति वाली पार्टी भाजपा से गठबंधन किया साथी ही मायावती ने ब्राम्हणों का विश्वास प्राप्त करने के लिये 2001 में सोशल रीमिक्स का मार्ग चुना था। उस समय बसपा के प्रथम ब्राम्हण महासचिव सतीश मिश्रा का यह नारा मान्य था कि ''हाथी नहीं गणेश है, ब्रम्हा विष्णु महेश है।'' उ.प्र. में 2019 के लोकसभा चुनाव में भी राजनीतिक दलों ने जातिगत गणित का समाधान उम्मीदवारों के चयन के रूप में प्रस्तुत किया। स्पष्ट है कि वोट पाने के लिये विकास का दावा कर रही राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव में प्रत्याशी के रूप में जातिगत आधार को ही प्रमुखता दे रही हैं। इंडिया टुडे अप्रैल 2019 में प्रस्तुत उ.प्र. में जातियो ं के वर्चश्व का चुनाव विवरण यह इंगित करता है कि जाति की प्रधानता राजनीति में ज़ोर पकड़ती जा रही है। राजनीतिक दलों के द्वारा चयनित प्रत्याशियों के प्रति जनमत का अनुमान लगाने के लिए एन. डी.टी.वी. इंडिया के द्वारा चंडीगढ़, दिल्ली, उ.प्र. व बिहार के ग्रामीण क्षेत्रो ं की सर्वे क्षण किया गया जिसमें लोगों के साक्षात्कार के दौरान जातिप्रधान मानसिकता के अनेक प्रमाण मिले। उत्तर प्रदेश में 12 हजार की आबादी वाले मैनपुरी के गाँव में 97 प्रतिशत यादव हैं एवं वोटों की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यहां लोग जातिगत स्वाभिमान के आधार पर वोट देने की बात करते हैं। उन्हें समाजवादी पार्टी के अलावा दूसरी पार्टी पर विश्वास नहीं है। इतना ही नहीं प्रतिपक्ष नेता इन क्षेत्रों में चुनाव प्रचार करने के लिए आते ही नहीं। युवा वोटर्स ने भी यादव प्रधान पार्टी को मत देने के लिए हामी भरी, वे किसी और पार्टी को तवज्जो नहीं देते। जाति के प्रति उसके सदस्यों में इतनी प्रबल निष्ठा होती है कि वे राजनीतिक दृष्टि से जाति के नेताओं का ही समर्थन करते हैं। ग्रामीण जनता के राजनीतिक जीवन में जाति का विशिष्ट प्रभाव अत्याधिक है।

साक्षात्कार है इस क्रम में यूपी के फूलपूर ग्रामीण क्षेत्र का सर्वेक्षण किया, जो पिछड़ा वर्ग (कुर्मी) प्रधान है यहाँ क्षेत्रीय राजनीति का संकीर्ण रूप दिखाई दिया जहाँ ग्रामीणों के अनुसार पिछड़ा वर्ग बँट गया है। सरकार भी केवल यादव जाति को ही लाभ पहुँचाती है और अन्य जातियों को हाशिए पर रखती है। सरकार ने पिछड़ी जाति की एकता तोड़ दी। यहाँ बी.जे.पी. ने पटैल (कुर्मी) उम्मीदवार खड़ा किया है एवं ग्रामीणों ने भी अपनी बिरादरी के उम्मीदवारों को चुनने की हामी भरी। ग्रामीण सदस्यों के अनुसार आरक्षण की नीति से ही विभाजन शुरू हो गया, सरकार ने 15 प्रतिशत आरक्षण यादव के लिए एवं 16 प्रतिशत अन्य शेष पिछड़ा वर्ग के लिए रखा, जिससे लोग अप्रसन्न हैं। इसी प्रकार 24 अप्रैल 2014 को वाराणसी के कटारी गाँव जो शहर से दूर है, के सर्वेक्षण में दलितों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार स्पष्ट हुआ। दलितों की बस्ती सवर्णों के रिहायशी स्थान से दूर थी। आज भी भोजन एवं सामाजिक सहवास संबंधी प्रतिबंध व्यवहृत हैं। व्यस्क दलित व्यक्तियों ने चुनाव में अरूचि दिखाई। उनकी सुविधाओं को नज़रअंदाज़ करने की वजह से वे सरकार से नाराज़ थे। एन.डी.टी.वी. इंडिया के द्वारा 2019 को हरियाणा के गाजियाबाद में साठा चौरासी गांवों का सर्वेक्षण किया गया। यह 144 गाँव राजपूतों के हैं, जिनमें 60 गाँव गोहलत एवं 84 गाँव तोमर राजपूतों के हैं। यहां लोग के शिक्षा का स्तर ऊँचा है। 60 प्रतिशत लोगों ने स्नातक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की है। इन 144 गाँवों में से पुलखुवा, डेहरागाँव तथा डासनागाँव का सर्वेक्षण किया गया, जहाँ युवाओं ने भी राजपूत उम्मीदवार को प्रधानता देने की बात की। गाँव के प्रमुख ही तय करते हैं कि चुनाव में कौन खड़ा होगा, अपनी जाति तक ही अपनी पहचान क्यों हो ? इसके संदर्भ में ग्रामीणों का कथन हो कि जाति में अपनेपन की भावना से ही अपनी पहचान सुरक्षित रहती है और यही जातिवाद का उद्देश्य है। वोटिंग के लिए भी सामूहिक निर्णय प्रधान होता है गाँवों के मुस्लिमों में भी राजपूत हैं जो पहले राजपूत होने का दावा करते हैं। साठा गाँव के डेहरागाँव का प्रधान मुस्लिम राजपूत है, डासनागाँव भी जो दिल्ली महानगर से दूर नहीं हो जातिवाद प्रधान है। शेरिंगका यह कथन कि ''जाति व्यवस्था में समझौते की गुंजाइश नहीं है। अनपढ़ से अनपढ़ हिन्दू भी सबसे बुद्धिमान व्यक्ति से इसके नियम मनवा सकता है।'' राजनीति के क्षेत्र में भी आज प्रासंगिक जान पड़ता है। दक्षिणी दिल्ली के 42 गाँवों में से 18 गाँव जाट बहुल है ंजहाँ निम्न जाति के गुर्जर के प्रत्या''ाी के प्रति रियलस्टेट डीलर 39 वर्षीय लक्ष्मण पवार कहते हैं ''मैं बीजेपी को सत्ता मे ंलाना चाहता हूं किन्तु जाट होने के नाते गुर्जर बिधुड़ी को कभी वोट नहीं दूँगा। (इंडिया टुडे 2019)

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारतीय जाति व्यवस्था की उत्पत्ति किसी एक कारण से नहीं हुई है उसके अनेक कारण थे। वास्तव में स्वयं जातिप्रथा में कार्य परिवर्तन नहीं हुआ है। रोजमर्रा के सामाजिक जीवन में विशेषतः गाँवों में जहाँ भारत की अधिकांश जनता निवास करती है, कोई परिवर्तन मुश्किल से दिखाई देता है। किन्तु जब चुनाव का समय आता है चाहे वह लोकसभा, विधानसभा, स्थानीय हो उसे समय जातिगत बंधन में शिथिलता आ जाती है। प्रो. श्रीनिवास के अनुसार ''अस्पृश्यता के विचार जो अतीत में जाति प्रथा पर छाए हुए थे कुछ ढीले पड़ जाते हैं किन्तु इसके साथ ही राजनीति में जातिवाद की लहर पहले से मजबूत हो जाती है।

''(प्रो. श्रीनिवास–आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन) वास्तव में जाति आधारित राजनीति में जनता का मत महत्वपूर्ण होता है। किन्तु यहाँ नागरिकता से उसका कोई संबंध नहीं होता। जनगणना नागरिकों की आवश्यकताओं से संबंधित है ताकि लोगों की सहायता के लिए नीतियों को उचित तरीके से निर्मित किया जा सके। दीपांकर गुप्ता ने लोक तांत्रिक तरीके से चयनित नेताओं पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि, ''वे जाति एवं परिवार के बारे में सोचते हैं। बुद्धिजीवी वर्ग भी इसमें सहयोग दे रहे है ंक्योंकि उन्हें लगता है कि इसमें जनता के मत की झलक देखने को मिलती है। जाति की राजनीति को संभवतः जनता की आवाज बताकर उचित ठहराया जा सकता है लेकिन यह निश्चित तौर से नागरिकता की आवाज़ को दबा देगी। भारतीय राजनीति में मौजूद वामपंथी और संकीर्णतावादियों ने, जातिवाद के खिलाफ खड़े न होकर नागरिकता को भुला दिया एवं वोट के प्रति अपनी चाहत को उजागर किया है।'' (इंडिया 2018) जैसे कि सुरिन्दर एस जोधका ने कहा कि जाति किसी न किसी रूप में राज्य का हथियार रही है। वास्तव में यह पूरे दक्षिण एशिया में ईसाईयों एवं मुस्लिमों व सिक्खों में भी विद्यमान है। हम औपनिवे''िाक वर्गीकरण के आधार पर कार्य नहीं कर सकते। हमें क्षेत्रीय बदलावों को भी देखने की आवश्यकता है क्योंकि संभवतः 30ः भारतीय अपनी जाति बताने से ही इंकार कर दें और यह प्रगतिशीलता का प्रतीक होगा। स्पष्ट है कि भारतीय समाज का राजनीतिकरण हो गया है एवं समाज की बागडोर राजनैतिक ने तृत्व के हाथों में है। नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के प्रभाव से जाति व्यवस्था में जो परिवर्तन दिखाई दिए उससे समाज विचारकों में यह प्रश्न निर्मित हुआ कि जाति का स्वरूप क्या होगा? वर्तमान भारतीय समाज का राजनीतिक परिदृश्य इसका जवाब है। भारतीय समाज में निर्मित जातिगत राजनीतिक स्वरूप से विखण्डनकारी प्रवृत्तियाँ ज़ोर पकड़ेंगी एवं सामाजिक संघर्ष की परिस्थितियाँ निर्मित होंगी। हम आंतरिक संघर्षों की समस्याओं से जूझने में अपनी शक्ति व्यय करेंगे जो राष्ट्रहित में बाधक होगा। संभवतः पड़ोसी राष्ट्र इन स्थितियों का लाभ उठाने से चूकेंगे नहीं। निश्चय ही आज भारतीय समाज में राजनीतिक स्थायित्व की आवश्यकता है जो नागरिकता के दृष्टिकोण से निर्मित हो। जनमत का जातिगत आधार प्रमुख न हो और साथ ही कुशल नेतृत्व की प्रधानता हो, जो देश के नागरिकों की समस्याओं का उचित समाधान प्रस्तुत कर सके एवं विकास के क्षेत्र में उनकी प्रत्येक आवश्यकताओं को पूर्ण करे। वास्तव में समाज में संगठनात्मक प्रवृत्ति को विकसित करने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग को सम्मिलित पहल करनी होगी। समाज में राष्ट्रवादी विचारधारा विकसित करना एवं लोगों में यह भावना जागृत करने का प्रयास करना होगा कि ''पहले भारतीय हूँ बाद में किसी जाति या संप्रदाय का'' तभी सही मायने में यह गर्व से कहा जा सकेगा कि 'मेरा भारत महान' है।

संदर्भ ग्रंथ –ः

1. रामधारीसिह दिनकर :संस्कृति के चार अध्यायःलोकभारती प्रकाशन इलाहाबादः 2003 नवीन संस्करण
2. मःएन श्रीनिवास– ंआधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तनः राजकमल प्रका''ान दिल्ली 1987
3. इंडिया टुडे मई 2018 अप्रैल 2019
4. ज़ेः एचः हट्टनः भारत में जाति प्रथा प्रथम संस्करण दिल्ली 1983
5. एनः डी टीवी इंडिया का ग्रामीण एवं नगरीय चुनावी सर्वेक्षण